P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-8* April- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

श्री अरविन्द का शैक्षिक मंथन

रणसिंह यादव
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

सारांश

श्री अरविंद के शिक्षा दर्शन का प्रमुख लक्ष्य विकासशील आत्मा के सर्वांगीण विकास में सहायक होना तथा उसे उच्च आदर्शों के लिए प्रयोग हेतु सक्षम बनाना है। राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण से श्री अरविन्द के शिक्षा संबंधी विचार महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के लक्ष्यों के समान है। उनके अनुसार शिक्षा एक राष्ट्र के विकास के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में जिज्ञासा, खोज, विश्लेषण व संश्लेशण करने की प्रवृति होती है इसलिए श्री अरविन्द विज्ञान को भी शिक्षा का महत्वपूर्ण भाग मानते है। शिक्षा एक ऐसा विषय रहा है जो वैदिक काल से ही भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण भाग रहा है। किसी भी देश के चरित्र निर्माण में मुख्य भूमिका उसकी शिक्षा पद्धति की होती है। शिक्षा के संबंध में श्री अरविन्द बताते हैं कि ''सच्ची शिक्षा वह है, जिसमें मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास हो, वह स्वयं में स्वतंत्रता पूर्वक विचार कर ठीक–ठीक निश्चय कर सके। वे ऐसी शिक्षा चाहते थे जो संकीर्ण भेदभाव तथा साम्प्रदायिकता के दोषों से ऊपर हो।'' शिक्षा ही व्यक्तित्व का निर्माण करने, मनुष्य को अस्पष्ट और अवचेतन जड़ता से उबारने तथा एक सुनिश्चित और आत्म चेतन सत्ता बनाने का साधन है। वर्तमान संदर्भ में महर्षि अरविन्द का शिक्षा दर्शन लक्ष्य की दृष्टि से आदर्शवादी, उपागम की दृष्टि से यथार्थवादी, क्रिया की दृष्टि से प्रयोजनवादी तथा महत्वाकांक्षा की दृष्टि से मानवतावादी है। आज की परिस्थितियों में जब हम अपनी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति एवं परम्परा को भूलकर भौतिकवादी सभ्यता का अंधानुकरण कर रहे है। अरविन्द का शिक्षा दर्शन हमें सही दिशा–निर्देश करता है। आज राष्ट्रीयता के लिए धार्मिक शिक्षा तथा आध्यात्मिक जागृति की अत्यन्त आवश्यकता है।

मुख्य शब्द : राष्ट्रवाद, जिज्ञासा, अन्तर्दृष्टि, शारीरिक शिक्षा, प्राण की शिक्षा, एकाग्रता, आध्यात्मिक शिक्षा।

प्रस्तावना

अरविंद की धारणा थी कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में यह विश्वास जागृत करना है कि मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से पूर्ण सक्षम है तथा वह शनैः शनैः अतिमानव (superman) की स्थिति में आ रहा है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति की अन्तर्निहित बौद्धिक एवं नैतिक क्षमताओं का सर्वोच्च विकास होना चाहिए। अरविंद का विश्वास था कि मानव दैवी शक्ति से समन्वित है और शिक्षा का लक्ष्य इस चेतना शक्ति का विकास करना है। इसीलिए वे मस्तिष्क को छठी ज्ञानेन्द्रिय मानते थे। शिक्षा का प्रयोजन ''इन छः ज्ञानेन्द्रियों का सदुपयोग करना सिखाना होना चाहिए। उन्होंने कहा था कि–मस्तिष्क का उच्चतम सीमा तक पूर्ण प्रशिक्षण होना चाहिए अन्यथा बालक अपूर्ण तथा एकांगी रह जायेगा जो आज हम देख सकते हैं। अतः शिक्षा का लक्ष्य मानव–व्यक्तित्व के समेकित विकास हेतु अतिमानस (upermind) का उपयोग करना है। वर्तमान शिक्षा पद्धति ने बच्चों को रटने की तरफ मोड़ दिया है जिसको श्री अरविन्द की छठी ज्ञानेद्रियों के साथ जोड़न आवश्यक है।

शिक्षा के पाठ्यक्रम के विषय में अरविन्द चाहते थे कि अनेक विषयों का सतही ज्ञान कराने की अपेक्षा विद्यार्थियों को कुछ चयनित विषयों का ही गहन अध्ययन कराया जाये। वे भारतीय इतिहास एवं संस्कृति को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग मानते थे क्योंकि उनका विचार था कि प्रत्येक बालक में इतिहास बोध होता है जो परी कथाओं, खेल व खिलौनों के माध्यम से प्रकट होता है। अतः बालकों को अभिरुचि अपने देश के साहित्य एवं इतिहास के प्रति विकसित करनी चाहिए।

विज्ञान द्वारा मानव प्राकृतिक वातावरण को समझता है तथा उसमें वस्तुनिष्ठ बुद्धि के विकास हेतु अनुशासन आता है। मस्तिष्क को प्रधानता देने के कारण अरविन्द पाठ्यक्रम में मनोविज्ञान विषय को भी सम्मिलित करना चाहते थे

जिससे कि समग्र जीवन–दृष्टि विकसित हो सके। इसी उद्देश्य से वे पाठ्यक्रम में दर्शन एवं तर्कशास्त्र को भी स्थान देते थे।

श्री अरविन्द आज की शिक्षा–पद्धति में भारतीय प्रतिभा की तीन विशेषताओं– आध्यात्मिकता, सर्जनात्मकता तथा बुद्धिमत्ता–का ह्रास एवं पतन देखते थे। इस पतन का कारण वे रुग्ण आध्यात्मिकता (diseased spirituality) मानते थे। श्री अरविन्द के शिक्षा दर्शन की उपादेयता को हम वर्तमान में उसी शिक्षा को आध्यात्मिकता के साथ जोड़कर कार्य कर सकते हैं। प्रत्येक दार्शनिक अंततः एक शिक्षाविद् होता है क्योंकि शिक्षा, दर्शन का गत्यात्मक पक्ष है। जैसा कि अभी हम देख चुके हैं – अरविन्द के दर्शन की चरम परिणति उनके शिक्षा–दर्शन में हुई है। वे वर्तमान शिक्षा–पद्धति से असन्तुष्ट थे। उनका कहना था– सूचनात्मक ज्ञान कुशाग्र बुद्धि का आधार नहीं हो सकता (information can not be the foundation of intelligence)। यह ज्ञान तो नवीन अनुसंधान तथा भावी क्रियाकलापों का आरम्भ मात्र होता है। अरविन्द की शिक्षा पद्धति की संकल्पना– अरविन्द इस प्रकार की शिक्षा पद्धति चाहते थे जो विद्यार्थी के ज्ञान–क्षेत्र का विस्तार करे, जो विद्यार्थियों की स्मृति, निर्णयन शक्ति एवं सर्जनात्मक क्षमता का विकास करे तथा जिसका माध्यम मातृभाषा हो। **श्री अरविन्द राष्ट्रीय विचारों के थे, अतः वे शिक्षा–पद्धति को भारतीय परम्परानुसार ढालना चाहते थे। उन्होंने शिक्षा द्वारा पुनर्जागरण का संदेश दिया था।** यह पुनर्जागरण तीन दिशाओं की ओर उन्मुख होना चाहिए :–

1. प्राचीन आध्यात्म–ज्ञान की पुर्नस्थापना;
2. इस आध्यातम–ज्ञान की दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान व विवेचनात्मक ज्ञान में प्रयोग; तथा
3. वर्तमान समस्याओं का भारतीय आत्म–ज्ञान की दृष्टि से समाधान की खोज तथा आध्यात्म प्रधान समाज की स्थापना।

अध्ययन का उद्देश्य

1. वर्तमान शिक्षा पद्धति को बेहतर एवं नागरिक उपयोगी बनाने हेतु इसमें श्री अरविन्द की शिक्षा पद्धति की महत्ता स्पष्ट करना।
2. श्री अरविन्द द्वारा प्रस्तुत शिक्षा संबंधी विचारों तथा कार्यक्रमों की उपादेयता से अवगत कराना।
3. वर्तमान शिक्षा पद्धतियों में उपस्थित समस्याओं एवं चुनौतियों की समीक्षा करना तथा वर्तमान पाठ्यक्रम की महत्ता स्पष्ट करना।
4. श्री अरविन्द के शिक्षाप्रद विचारों, कार्यक्रमों एवं पद्धतियों के आधार पर नागरिकों में इन विचारों के प्रति जागरूकता एवं नागरिकों में सद्गुणों का विकास करना।
5. श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य विकासशील आत्मा के सर्वांगीण विकास में सहायक होना तथा उसे उच्च आदर्शों के लिए प्रयोग हेतु सक्षम बनाना ।
6. शिक्षा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति में जिज्ञासा, खोज, विश्लेषण व संश्लेषण करने की प्रवृत्ति पैदा करना।

साहित्यावलोकन

श्री अरविन्द के शिक्षा एवं राष्ट्रवाद के संदर्भ में किए गए इस शोध के उद्देश्यों का विवरण प्रस्तुत करते हुए इस विषय पर लिखे गए साहित्य का अवलोकन, विश्लेषण और मूल्यांकन किया गया है–

प्रदीप नारंग तथा वंदना, मासिक पत्रिका (फरवरी 2018) अग्निशिखा में श्री अरविन्दों की अतिमानसिक अवस्था का चित्रण करते हुए कहते हैं कि शैक्षिक चिंतन एवं मनन के द्वारा मानस से अतिमानसिक अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है।

प्रदीप नारंग तथा वंदना, मासिक पत्रिका (सितम्बर 2017) अग्निशिखा में भय एवं क्रोध को मनुष्य की अतिमानसिक अवस्था में बहुत बड़ा अवरोध बताते हुए इन समस्याओं के निदान के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। भय एवं क्रोध पर प्रेम से विजय प्राप्त की जा सकती है। इसकी विस्तृत व्याख्या इस मासिक पत्रिका में की गई है।

शिवप्रसाद सिंह द्वारा लिखित पुस्तक ''उत्तर योगी श्री अरविन्द जीवन एवं दर्शन, संस्करण–2017 (लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद) में श्री अरविन्द को एक योगी के रूप में सिद्ध करते हुए उसकी समकालीन प्रासंगिकता को रेखांकित किया गया है। वर्तमान समय में श्री अरविन्द के शिक्षा दर्शन को अपना कर ही विश्व में हर मनुष्य अपने नागरिक चरित्र को उत्तम बना सकता हैं। इस विचारधारा का प्रतिनिधित्व ये पुस्तक करती है।

वी. पी. वर्मा अपनी पुस्तक 'आधुनिक भारतीय राजनैतिक विचारक' (2017) में श्री अरविन्दों को पुर्नजागरण के पुरोधा के रूप में स्वीकार करते हुए उनके विचारों की महत्ता को रेखांकित करते है।

पुरूषोत्तम नागर की पुस्तक 'आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों' (2016) में वह अरविन्दों के राष्ट्रवादी विचार, शिक्षा संबंधी विचारों की उपयोगिता को रेखांकित करते हैं। वे मानते है कि वर्तमान में विश्व में ''वसुधैवकुटुम्बकम'' की भावना का विकास श्री अरविन्दों के शिक्षा संबंधी विचारों के कारण ही संभव है।

बसंत कुमार लाल द्वारा रचित पुस्तक 'समकालीन भारतीय दर्शन'' (2016) में श्री अरविन्द के विचारों की महत्ता बताई है। इसके अन्तर्गत वह श्री अरविन्दों के अतिमानस की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हर मनुष्य इसी जीवन में अपना उत्तरोत्तर विकास करते हुए अतिमानसिक रूप को प्राप्त कर सकता है।

मंगेश नाडकर्णी अपनी पुस्तक 'सावित्री' (9 मई, 2011) के माध्यम से मनुष्य मन को परात्पर तक उठाने और विस्तीर्ण करने वाली सर्वाधिक प्रभावपूर्ण काव्यात्मक कलाकृति का उदाहरण पेश करते हैं। इनके वह तीन विषय मानते हैं– प्रेम, मृत्यु और पृथ्वी पर जीवन।

श्री अरविन्द के शिक्षा संबंधी विचार

श्री अरविन्द ने भारतीय शिक्षा चिन्तन में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने सर्वप्रथम घोषणा की कि मानव सांसारिक जीवन में भी दैवी शक्ति प्राप्त कर सकता है। उन्होंने वर्तमान शिक्षा पद्धति को राष्ट्र से जोड़ने पर जोर दिया। राष्ट्रीय आन्दोलन में लगे हुए विद्यार्थियों को

शैक्षिक सुविधाएं प्रदान करने हेतु कलकत्ता में एक राष्ट्रीयता महाविद्यालय स्थापित किया गया। श्री अरविन्द को इस कॉलेज का प्रधानाचार्य नियुक्त किया गया। इस अवसर का लाभ उठाते हुए श्री अरविन्द ने राष्ट्रीय शिक्षा की संकल्पना का विकास किया तथा अपने शिक्षा –दर्शन की आधार–शिला रखी। यही कॉलेज आगे चलकर जादवपुर विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुआ। प्रधानाचार्य का कार्य करते हुए श्री अरविन्द अपने लेखन तथा भाषणों द्वारा देशवासियों को प्रेरणा देते हुए राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते रहे। श्री अरविन्द राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रपंथ के समर्थक थे। 1908 ई. में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण श्री अरविन्द गिरफ्तार हुए तथा जेल में भी रहे। उन पर मुकदमा चलाया गया तथा अदालत में दैवयोग से उनके मुकदमें की सुनवाई सैशन जज सी.पी. बीच क्राफ्ट ने की जो अरविन्द के आईसीएस के सहपाठी रह चुके थे तथा अरविन्द की कुशाग्र बुद्धि से प्रभावित थे। अरविन्द के वकील चितरंजन दास ने जज बीच क्राफ्ट से कहा जब आप अरविन्द की बुद्धि से प्रभावित है तो यह कैसे संभव है कि अरविन्द किसी षड्यंत्र में भाग ले सकते है ? बिच क्राफ्ट ने अरविन्द को जेल से मुक्त कर दिया।

जेल की अवधि में श्री अरविन्द ने आध्यात्मिक साधना की तथा उन्हें ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ। इससे पूर्व के 1907 ई. में जब बडौदा में थे तो एक प्रसिद्ध योगी विष्णु भास्कर लेले के सम्पर्क में आए और योग साधना में प्रवृत हुए। जेल से मुक्त होकर वे 4 अप्रैल, 1910 को पांडिचेरी चले गए और उन्होंने अपना जीवन अनन्त सत्य की खोज मे लगा दिया। यह सब संभव हुआ उनके भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षा दर्शन एवं भारत के स्वतंत्रता संग्राम की तपस्या के कारण। सतत् साधना द्वारा उन्होंने अपनी आध्यात्मिक दार्शनिक विचारधारा का विकास किया। आज भी श्री अरविन्द की सतत् साधना को ही स्वामी रामदेव तथा श्री श्री रविशंकर जनता के बीच फेला रहे है।

श्री अरविन्द ने स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान 'राष्ट्रीय शिक्षा' की संकल्पना दी। इसके लिए उन्होंने प्राचीन वैदिक शिक्षा के साथ–साथ पाश्चात्य शिक्षा का समिश्रण किया परन्तु भारत की प्राचीन शिक्षा को ही शिक्षा की मुख्य विषय वस्तु बनाया। वे शिक्षा के द्वारा उग्र राष्ट्रीय विचारधारा का प्रतिपादित करना चाहते थे जिसमें वह काफी हद तक सफल भी होते है। श्री अरविन्द के विचारों पर उनके विस्तृत अध्ययन तथा विभिन्न संस्कृति की जानकारी का प्रभाव तो है ही साथ ही उन्होंने कम ही उम्र में पाश्चात्य दर्शन तथा साहित्य का अध्ययन किया था। वे प्लेटो तथा अरस्तु जैसे महानृ ग्रीक विचारकों के शिक्षा संबंधी विचारों से भलीभांति परिचित थे जिन्होंने कहा है कि शिक्षा ही राष्ट्रवाद की कुंजी है। श्री अरविन्द भविष्य के व्यक्ति थे, उन्होंने हमें वह मार्ग दिया है जो भविष्य की उस महिमा की ओर जाता है जिसे स्वयं दिव्य इच्छा ने गढ़ा है। श्री अरविन्द संसार को भविष्य के सौन्दर्य के बारे में, बताने के लिए आए थे उस सौन्दर्य के बारे में जिसे अभी चरितार्थ होना था।

शिक्षा का आरम्भ

श्री अरविन्द मानते हैं कि मनुष्य की शिक्षा उसके जन्मकाल से ही आरंभ हो जानी चाहिए और उसके समूचे जीवन चलती रहनी चाहिए। बल्कि, सच पूछा जाये तो यदि शिक्षा को अत्यधिक मात्रा में फलदायक होना हो तो उसे जन्म से पहले ही आरंभ हो जाना चाहिए। वास्तव में स्वयं माता ही इस शिक्षा का प्रारंभ द्विविध क्रिया के द्वारा करती है : सबसे पहले वह अपनी निजी उन्नति के लिए उसे स्वयं अपने ऊपर आरंभ करती है और फिर उस बच्चे के ऊपर आरंभ करती है जिसे वह अपने अंदर स्थूल रूप में गढ़ती है। यह बात निश्चित है कि जन्म लेने वाले बच्चे का स्वभाव बहुत कुछ उसे उत्पन्न करने वाली माता पर, उसकी अभीप्सा और संकल्प पर निर्भर करता है और जिस भौतिक वातावरण में वह निवास करती है उसका प्रभाव तो पड़ता ही है साथ ही जो शिक्षा मां को प्राप्त करनी है उसके लिये यह बात ध्यान में रखनी होगी कि उसके विचार सदा सुन्दर और शुद्ध हो, भाव उच्च और सूक्ष्म तथा चारों ओर का वातावरण यथासंभव सुसमंजस और अत्यंत सादगी से भरा हुआ हो और अगर इसके साथ ही वह चेतन और निश्चित रूप में यह इच्छा भी रखे कि वह जिस ऊंचे–से–ऊंचे आदर्श को धारणा कर सकती है उसी के अनुसार वह बच्चे को बनायेगी तो बच्चे को संसार में आने के लिये खूब उत्तम अवस्थाएं प्राप्त होगी और उसके लिये अधिक–से–अधिक सम्भावनाएं खुल जायेंगी। आज भी हम श्री अरविन्द की सादगीपूर्ण शैक्षिक वातावरण को लाना चाहेंगे।

शिक्षा के प्रधान पहलू

श्री अरविन्द अपने शिक्षा सम्बंधी विचारों को आगे बढ़ाते हुए कहते है कि शिक्षा के पूर्ण होने के लिए उसमें पांच प्रधान पहलू होने चाहिए। इनका सम्बन्ध मनुष्य की पांच प्रधान क्रियाओं से होगा–भौतिक, प्राणिक, मानसिक, आंतरात्मिक और आध्यात्मिक। अतः जरूरी है कि शिक्षा के ये सब पहलू दूसरे का स्थान ले और सभी पहलुओं को, जीवन के अंतराल तक, परस्पर एक–दूसरे को पूर्ण बनाते हुए जारी रहना चाहिए।

शिक्षा में अभिभावक की भूमिका

श्री अरविन्द के अनुसार कुछ माता–पिता ऐसे भी है जो यह जानते हैं कि उनके बच्चे को शिक्षा मिलनी चाहिए और वे उसे शिक्षा देने की चेष्टा भी करते हैं। पर उनमें से बहुत थोड़े लोग– जो लोग इस विषय में अत्यंत तत्पर और सच्चे होते हैं उनमें से भी बहुत थोड़े लोग – यह जानते हैं कि बच्चे को शिक्षा देने की योग्यता प्राप्त करने के लिए सबसे पहला कर्तव्य है अपने आपको शिक्षा देना, अपने विषय में सचेतन होना और अपने ऊपर प्रभुत्व स्थापित करना, जिससे कि हम अपने बच्चे के सामने कोई बुरा उदाहरण न पेश करें क्योंकि एकमात्र उदाहरण के द्वारा ही शिक्षा फलदायी बनती है। केवल अच्छी बातें कहने और बुद्धिमानी का परामर्श देने का बच्चे पर बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है, यदि हम अपने जीवंत उदाहरण के द्वारा अपनी सिखायी बातों का सत्य उसे न दिखा दें। सच्चाई, ईमानदारी, स्पष्टवादिता, साहस, निष्काम भाव, निःस्वार्थता, धैर्य, सहनशीलता, अध्यवसाय, शांति, स्थिरता, आत्म–संयम आदि सभी ऐसे गुण हैं जो सुदंर भाषणों की

अपेक्षा अनंत गुना अधिक अच्छे रूप में अपने उदाहरण के द्वारा सिखाये जाते हैं। माता–पिताओं को एक ऊँचा आदर्श अपने सामने रखना होगा और उसी आदर्श के अनुकूल सर्वदा कार्य होगा। फिर आप देखोगे कि तुम्हारा बच्चा भी धीरे–धीरे उस आदर्श को अपने अंदर ला रहा है और जो सब गुण तुम उसके स्वभाव में देखना चाहते हो उन्हें वह अपने–आप अभिव्यक्त कर रहा है। यह अत्यंत स्वाभाविक है कि बच्चे अपने माता–पिता के प्रति आदर और भक्ति भाव रखते हैं, अगर वे एकदम अयोग्य ही न हों तो, वे अपने बच्चों को देवता जैसा प्रतीत होते हैं और बच्चे यथाशक्ति उत्तम से उत्तम रूप में उनका अनुकरण करने की चेष्टा करते हैं।

बहुत थोड़े से लोगों को छोड़कर, प्रायः सभी माता–पिता इस बात का विचार नहीं करते कि उनके दोषों, आवेगों, दुर्बलताओं और आत्मसंयम के अभाव का कितना बुरा प्रभाव उनके बच्चों पर पड़ता है। इसी संदर्भ में श्री अरविन्द कहते हैं अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारा बच्चा तुम्हारा आदर करे तो अपने लिए आदरभाव रखो और प्रत्येक मुहूर्त सम्मान के योग्य बनो। कभी भी, स्वेच्छाचारी, अत्याचारी, सहिष्णु और क्रोधित मत बनो। जब तुम्हारा बच्चा तुमसे कोई प्रश्न पूछे तब तुम यह समझ कर कि वह तुम्हारी बात नहीं समझ सकता, उसे जड़ता और मूर्खता के साथ कोई उत्तर मत दो। अगर तुम थोड़ा कष्ट स्वीकार करो तो तुम सदा ही उसे अपनी बात समझा सकोगे। इस प्रसिद्ध उक्ति के होते हुए भी कि 'सत्य बोलना सदा अच्छा नहीं होता', मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूँ कि 'सत्य कहना सदा अच्छा नहीं होता', मैं दृढतापूर्वक कहता हूँ कि सत्य कहना सदा अच्छा होता है। चतुराई केवल इस बात में है कि उसे इस ढंग से कहा जाए कि सुनने वाले का मस्तिष्क उसे ग्रहण कर ले। जीवन के प्रारंभिक काल में बारह से चौदह वर्ष की अवस्था तक, बच्चें का मन सूक्ष्म भावनाओं और सामान्य विचारों तक नहीं पहुंच पाता। पर फिर भी तुम ठोस उपमा, रूपक या दृष्टांत द्वारा ये सब चीजें समझने का अभ्यास उसे करा सकते हो। काफी बड़ी उम्र तक और जो लोग मानसिक रूप से सदा ही बच्चे बने रहते हैं उन लोगों के लिए सैद्धांतिक विवेचन के एक ढेर की अपेक्षा एक आख्यान, एक कथानक, यदि अच्छे ढंग से कहा जाए तो, अधिक शिक्षाप्रद होता है। श्री अरविन्द सचेत करते हुए कहते हैं – एक भूल से तुम्हें और बचना होगा। जब तक कोई निश्चित उद्देश्य न हो और एकदम अनिवार्य न हो जाए तब तक कभी अपने बच्चे को बुरा–भला मत कहो। बार–बार डांट–फटकार खाने से बच्चा उसके प्रति कुंद हो जाता है और फिर वह शब्दों और स्वर की कठोरता को बहुत अधिक महत्व नहीं देता। विशेषकर इस बात की सावधानी रखो कि ऐसे अपराध के लिए, जिसे तुम स्वयं करते हो, उसे कभी न डांटो। बच्चों की दृष्टि बड़ी पैनी और साफ होती है; वे बहुत जल्दी तुम्हारी दुर्बलताओं का पता लगा लेते हैं और उन्हें बिना किसी दयाभाव के नोट कर लेते हैं।

जब बच्चा कोई भूल कर बैठे तो अपनी ओर से ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दो कि वह अपने–आप सरलता और सच्चाई के साथ उसे स्वीकार कर ले। और जब यह स्वीकार कर ले तब तुम दयालुता और प्रेम के साथ उसे समझा दो कि उसके कार्य में क्या भूल थी और कि उसे फिर दुबारा वैसा नहीं करना चाहिए। किसी भी हालत में उसे बुरा–भला मत कहो, स्वीकार किए हुए अपराध को अवश्य क्षमा कर देना चाहिए। तुम्हें अपने और अपने बच्चे के बीच किसी प्रकार का भय नहीं घुसने देना चाहिए; भय के द्वारा शिक्षा देना बड़ा खतरनाक तरीका है। यह सदा ही छल–कपट और असत्य को उत्पन्न करता है। स्पष्टदर्शी, सुदृढ़ पर साथ ही कोमल प्रेम और पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान विश्वास का बंधन पैदा करते हैं जो तुम्हारे बच्चे की शिक्षा को फलदायी बनाने के लिए तुम्हारे लिए अत्यंत आवश्यक होता है। और फिर यह कभी न भूलों कि तुम्हें अपने कर्तव्य के शिखर पर स्थित रहने तथा उसे वास्तविक रूप में निभाने के लिए सदा और निरंतर ऊपर उठना होगा। बच्चे को जन्म देने के नाते ही तुम्हें उसके प्रति अपना कर्तव्य निभाना चाहिए।

मानव चेतना का स्तर

मानव चेतना के जितने भी स्तर हैं उनमें भौतिक स्तर एक ऐसा स्तर है जो पूरी तरह से पद्धति, व्यवस्था, अनुशासन और प्रणाली के द्वारा नियंत्रित होता है। जड़तत्व में जो नमनीयता और ग्रहणशीलता का अभाव है उनके स्थान पर हमें पूरे ब्योरे साथ एक ऐसा सुसंगठन ले आना होगा जो सच्चा भी हो और व्यापक भी। इस सुसंगठन को लाते हुए, अवश्य ही, हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि हमारी सत्ता के सभी लोक–लोकांतर, परस्पर–संबद्ध, एक–दूसरे पर आश्रित और एक–दूसरे में प्रवेश लिये हुए हैं। फिर भी, यदि किसी मानसिक या प्राणिक आवेग को शरीर के अंदर व्यक्त होना हो तो उसे एक समुचित और सुनिश्चित प्रणाली का अनुसरण करना होगा। यही कारण है कि शरीर की समस्त शिक्षा को, अगर उसे फलोत्पादक होना हो तो, कठोर और सविस्तार, पूर्वदर्शी और प्रणालीबद्ध होना होगा। उसे आदतों का रूप ग्रहण कर लेना होगा; क्योंकि शरीर सचमुच अभ्यासों से गठित एक सत्ता है। परंतु वे सब अभ्यास संयमित और नियमित होने चाहियें और साथ ही उनमें इतनी पर्याप्त मात्रा के लोच होनी चाहिये कि वे सभी परिस्थितियों और मानव आधार की वृद्धि और विकास की आवश्यकताओं के अनुकुल अपने को ढाल लें।

अच्छी शिक्षा हेतु अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण बातें

शरीर की समस्त शिक्षा एकदम जन्म के साथ ही आरंभ हो जानी चाहिये ओर सारे जीवन भर चलती चाहिये। उसके विषय में ऐसा कभी नहीं कहा जा सकता कि उसका आरंभ बहुत जल्दी हो गया है अथवा वह बहुत देर तक चल रही है। आज भी हम श्रीअरविन्द के शैक्षिक विचारों को जीवन अपनाते हैं तथा शरीर की शिक्षा के तीन प्रधान रुप मानते हैं :

1. शरीरिक क्रियाओं को संयमित और नियमित करना,
2. शरीर के सभी अंगों और क्रियाओं का सर्वांगपूर्ण, प्रणालीबद्ध और सुसमंजस विकास करना, और
3. अगर शरीर में कोई दोष और विकृति हो तो उसे सुधारना।

जब बच्चा अपने अंगों का व्यवहार करने योग्य हो जाए तब वह प्रतिदिन कुछ समय अपने शरीर के सभी

भागों को विधिपूर्वक और नियमित रूप से विकसित करने में लगाये –प्रत्येक दिन 20 से 30 मिनट तक– अगर संभव हो तो सवेरे बिछौने से उठने के बाद का समय अधिक अच्छा होगा। यदि लगाया जाये तो वे मांसपेशियों में अच्छा गति और संतुलित वृद्धि ले आने के लिए पर्याप्त होंगे। साथ ही उससे जोड़ों और रीढ़ की हड्डी का सख्त पड़ जाना भी रूक जाता है जो कि साधारणतया अपने समय से बहुत पहले ही आ जाता है। बच्चों की शिक्षा के साधारण कार्यक्रम के अंदर खेल–कूद को काफी अच्छा स्थान देना चाहिए; इससे उसे समस्त औषध–जगत् की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त होगा। अगर धूप में एक घंटा व्यायाम किया जाए तो कमजोरी या खून की कमी दूर करने में वह बलवर्धक दवाओं के एक समूचे भंडार से कहीं अधिक काम करता है। जब तक दूसरी तरह से काम चलाना पूर्ण रूप से असंभव न हो जाए तब तक कभी भी औषधि मत ग्रहण करो; और इस ''पूर्ण रूप से असंभव'' के विषय में भी तुम्हें पूर्ण रूप से कठोर होना चाहिए– इस स्थिति को सहज ही स्वीकार नहीं करना चाहिए। यद्यपि शरीर–चर्या के इस प्रोग्राम के अंदर कुछ प्रसिद्ध– साधारण पद्धतियां हैं जिनके द्वारा शरीर का उत्तमोत्तम विकास किया जा सकता है, फिर भी यदि किसी पद्धति को पूर्ण रूप से फलदायी बनाना हो तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वतंत्र रूप से विचार करना चाहिए। और उसके लिए कोई पद्धति निश्चित करने के लिए यदि संभव हो तो किसी सुयोग्य व्यक्ति की सहायता लेनी चाहिए अथवा इस विषय से संबंधित पुस्तकों का अवलोकन करना चाहिए। ऐसी पुस्तकें काफी छप चुकी हैं अथवा छप रही हैं।

पर, हल हाल में बच्चे को, चाहे वह जो कुछ भी करता हो, सोने के लिए काफी समय मिलना चाहिए। यह समय उम्र के अनुसार अलग–अलग हो सकता है। पालने के बच्चो को जगने की अपेक्षा सोना अधिक चाहिए। पर जैसे–जैसे बच्चा बढ़ता जाएगा वैसे–वैसे सोने का समय कम होता जाएगा। परंतु युवावस्था आने तक यह समय 8 घंटे से कम नहीं होना चाहिए और फिर सोने का स्थान खूब शांत और हवादार होना चाहिए। और कभी व्यर्थ में बच्चे की प्रारंभिक रात की नींद से वंचित नहीं करना चाहिए। स्नायुओं को आराम पहुंचाने के लिए आधी रात से पहले का समय सबसे उत्तम है। फिर जगने के समय में भी प्रत्येक आदमी के लिए, जो कि अपनी स्नायुओं में सामंजस्य बनाए रखना चाहता है, विश्राम करना अत्यंत आवश्यक है। मांसपेशियों और स्नायुओं को विश्राम देने की विधि जानना एक कला है और बिल्कुल छोटी अवस्था में ही बच्चों को इसकी शिक्षा देनी चाहिए। पर बहुतेरे माता–पिता ऐसे होते हैं जो इसके विपरीत अपने बच्चों को निरंतर कार्य करते रहने के लिए बाध्य करते हैं। जब बच्चा चुपचाप बैठता है तब वे समझते हैं कि वह बीमार हो गया है। यहां तक कि ऐसे माता–पिता भी जिन्हें अपने बच्चों से घरेलू काम कराने की बुरी आदत होती है और इस तरह वे बच्चों के आराम कराने का समय ले लेते हैं। एक बढ़ते हुए स्नायुमंडल के लिए इससे अधिक बुरी चीज और नहीं होती। अत्यंत लगातार होने वाले प्रयास का दबाव अथवा उसके ऊपर लादे हुए, स्वेच्छापूर्व पसंद नहीं किए हुए, कार्य का भार सहने में वह असमर्थ होता है। समस्त प्रचलित भावनाओं और धारणाओं के विरूद्ध मेरा तो मत यह है कि बच्चों से सेवा की मांग करना उचित नहीं है, यह समझना अनुचित है कि माता–पिता की सेवा करना बच्चे का कर्तव्य है। बल्कि अधिक बड़ा सत्य इसके विपरीत है : निश्चय ही यही स्वाभाविक है कि माता–पिता अपने बच्चों की सेवा करें, कम–से–कम उनकी अधिकतम देख–भाल करें। यदि बच्चा स्वतंत्रतापूर्वक परिवार के लिए काम करना स्वयं पसंद करे और कार्य को खेल के रूप में करे तभी उसे ऐसा करने देना उचित है। और उस हालत में भी हमें इस विषय में सावधान रहना चाहिए कि किसी तरह उसके आराम का समय कम न हो जाए जो कि उसके शरीर के समुचित रूप से कार्य करने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

शिक्षा के लाभ

अरविन्द बालक के बौद्धिक विकास के साथ उसका नैतिक एवं धार्मिक विकास भी

करना चाहते थे। उनकी धारणा थी– मानव की मानसिक प्रवृत्ति नैतिक प्रवृति पर आधारित है। बौद्धिक शिक्षा, जो नैतिक व भावनात्मक प्रगति से रहित हो, मानव के लिए हानिकारक है। नैतिक शिक्षा हेतु अरविन्द गुरु की प्राचीन भारतीय परंपरा के पक्षधर थे जिसमें गुरु, शिष्य का मित्र, पथ प्रदर्शक तथा सहायक हो सकता था। अनुशासन द्वारा ही विद्यार्थियों में अच्छी आदतों का निर्माण हो सकता है। ''नैतिक संसूचन विधि'' (method of suggestion) द्वारा दी जानी चाहिए जिसमें गुरु व्यक्तिगत आदर्श जीवन एवं प्राचीन महापुरुषों के उदाहरण द्वारा विद्यार्थियों को नैतिक विकास हेतु उत्प्रेरित करे।

श्रीअरविन्द के अनसुार उचित समय पर दिये जाने वाले उन्नत शारीरिक शिक्षण के द्वारा बहुत से शारीरिक दोषों को, कुरूपताओं को दूर किया जा सकता है। पर, अगर किसी कारण वंश, किसी को यह शिक्षा बचपन में न दी गयी हो तो उसका आरंभ किसी भी उम्र में किया जा सकता है और फिर सारे जीवन इसका अनुसरण किया जा सकता है परंतु जितनी ही देर से हम आरंभ करेंगे उतना ही अधिक हमें बुरी आदतों का मुकाबला करने,उन्हें सुधारने, जड़ता–कठोरता को दूर कर कोमलता–नमनीयता लाने,और विकृत अंगों की दुरुस्त करने के लिये तैयार रहना होगा। इस तैयारी के काम के लिये बहुत अधिक धैर्य और लगन की आवश्यकता होगी और तब कहीं वह अवस्था आयेगी जब हम शरीर के आकार और उसकी गतियों में सामंजस्य स्थापित करने के लिये किसी क्रियात्मक प्रोग्राम को आरंभ कर सकेंगे। परंतु जिस सौंदर्य को प्राप्त करना है उसके जीवंत आदर्श को अगर तुम अपने अंदर धारण करो तो अपने लक्ष्य पर पहुंचना तुम्हारे लिये सुनिश्चित है।

सब प्रकार की शिक्षाओं में संभवतः प्राण की शिक्षा सबसे अधिक महत्वपूर्ण और सबसे अधिक आवश्यक है। फिर भी इसका ज्ञानपूर्वक तथा विधिवत् आरंभ और अनुसरण बहुत कम लोग करते है। इसके कारण है; सबसे पहले इस विशेष विषय का जिन बातों से संबंध है उनके स्वरुप के विषय में मानव–बुद्धि को कोई सुस्पष्ट धारणा नहीं है; दूसरे, यह कार्य बड़ा ही कठिन है और इसमें

सफलता प्राप्त करने के लिये हमारे अंदर सहनशीलता, अनंत अध्यवसाय और सुदृढ़ संकल्प होने आवश्यक हैं।

शिक्षक व शिक्षण

अरविन्द के अनुसार शिक्षण एक विज्ञान है जिसके द्वारा विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन आना अनिवार्य है। उनके शब्दों में– वास्तविक शिक्षण का प्रथम सिद्धान्त है कि कुछ भी पढ़ाना संभव नहीं अर्थात् बाहर से शिक्षार्थी के मस्तिष्क पर कोई चीज न थोपी जाये। शिक्षण प्रक्रिया द्वारा शिक्षार्थी के मस्तिष्क की क्रिया को ठीक दिशा देनी चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी को व्यक्तिगत अभिवृत्ति एवं योग्यता के अनुकूल शिक्षा देनी चाहिए। विद्यार्थी को अपनी प्रवृति अर्थात् स्वधर्म के अनुसार विकास के अवसर मिलने चाहिए। अरविन्द मानस अर्थात् मस्तिष्क को छठी ज्ञानेन्द्रिय मानते थे जिसके विकास पर वे अधिक बल देते थे। विकसित मानस से सूक्ष्म दृष्टि उत्पन्न होती है जिससे निष्पक्ष दृष्टिकोण विकसित होता है। योग द्वारा चित्त शुद्धि शिक्षण का लक्ष्य होना चाहिए। अरविन्द की दृष्टि में वही शिक्षक प्रभावी शिक्षण कर सकता है जो उपरोक्त विधि से विद्यार्थी का विकास करे। शिक्षित विद्यार्थियों को ज्ञानेन्द्रियों तथा मस्तिष्क के सही उपयोग द्वारा उनकी पर्यवेक्षण (observation), अवधान (tention) निर्णय तथा स्मरण शक्ति का विकास करने में सहायता करे। शिक्षण बालकों की तर्क शक्ति के विकास द्वारा उनमें अंतर्दृष्टि (intution) उत्पन्न करे। अरविन्द शिक्षक का महत्व प्रकट करते हुए कहते थे कि शिक्षक प्रशिक्षक नहीं है, वह तो सहायक एवं पथ–प्रदर्शक है। वह केवल ज्ञान ही नहीं देता बल्कि वह ज्ञान प्राप्त करने की दिशा भी दिखलाता है। शिक्षण–पद्धति की उत्कृष्टता उपयुक्त शिक्षक पर ही निर्भर होती है। वर्तमान में जो अन्तर गुरु शिष्य में बढ़ता जा रहा है उसको हम श्री अरविन्द की नैतिक शिक्षा से दूर कर सकते हैं। वर्तमान में श्री अरविन्द की गुरु शिष्य परम्परा पर आधारित शिक्षा को लागू करना आवश्यक है।

निष्कर्ष

वर्तमान में भारत जिस धर्म और राजनीति में उलझा हुआ है तथा एक नाजुक दौर से गुजर रहा है, ऐसे समय में श्री अरविंद के विचार तथा उनकी अवधारणाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उनके विचार आज भी इन सभी क्षेत्रों में प्रांसगिक है तथा उनकी उपयोगिता वर्तमान की सभी समस्याओं में निहित है। श्री अरविंद के जीवन का लक्ष्य था–चेतना का विकास और इसकी प्राप्ति श्री अरविन्द द्वारा बताई गई शिक्षा पद्धति द्वारा ही संभव है।

वर्तमान के भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है लेकिन अपने समाज एवं राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग नहीं है। अधिकारों के परस्पर विरोधी सिद्धांत पनप रहे हैं, किन्तु कर्त्तव्यों और दायित्वों के पालन के प्रति विशेष अभिरूचि का अभाव है। प्रत्येक व्यक्ति को कर्त्तव्य जागरूकता के ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अरविन्द की शिक्षा पद्धति अत्यन्त उपयोगी एवं प्रासंगिक है।

वर्तमान में युवा प्रेरणा स्रोत एवं युवाओं के वर्तमान जीवन चरित्र को अधिक उत्कृष्ठ बनाने में श्री अरविन्द की शिक्षा दर्शन की अत्यंत प्रासंगिकता है। श्री अरविंद ने भारत के युवा लोगों को विश्वास दिलाया कि स्वार्थ रहित कर्ममय जीवन से ही व्यक्ति और राष्ट्र दोनों का विकास हो सकता हैं।

भारत के युवाओं को जिन समस्याओं से संघर्ष करना पड़ रहा है तथा विद्यार्थियों में जो अनुशासनहीनता दिखाई पड़ती है उसे श्री अरविंद के शैक्षिक चिंतन को स्वीकार करने से बहुत हद तक कम किया जा सकता है क्योंकि श्री अरविंद ने केवल अधिकारों के लिए संघर्ष करने की अपेक्षा अपने कर्त्तव्यों को विशेष महत्त्व दिया तथा राष्ट्रवाद को हमेशा सर्वोपरि रखा। किसी भी देश के चरित्र निर्माण में मुख्य भूमिका उसकी शिक्षा पद्धति की है। शिक्षा के क्षेत्र में भी श्री अरविन्दों के विचार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अत्यंत प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *प्रदीप नारंग एवं वंदना, अग्निशिखा, अखिल भारतीय पत्रिका, स्वाधीन चैटजी, पांडिचेरी, अंक फरवरी, 2018 पृ. 30–31।*
2. *वर्मा वी.पी., आधुनिक भारतीय राजनैतिक विचारक, 2017, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशक आगरा, पृ. 35।*
3. *प्रदीप नारंग एवं वंदना, अग्निशिखा, अखिल भारतीय पत्रिका, स्वाधीन चैटजी, पांडिचेरी, अंक सितम्बर, 2017 पृ. 40–41, 51।*
4. *बसंत कुमार लाल, समकालीन भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली वाराणसी, पटना 2016, पृ. 74–75*
5. *रविन्द्र, श्री अरविन्द : जीवन और दर्शन, 1980, श्री अरविन्द सोसायटी पांडिचेरी, पृ. 18, 22, 83।*
6. *सिंह, शिवप्रसाद, उत्तर योगी श्री अरविन्द जीवन एवं दर्शन, संस्करण–2017*
7. *नागर, पुरूषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों, 2016*
8. *शर्मा, छोटेनारायण, श्री अरविन्द, नवज्योति कार्यालय, श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी 1993, पृ. 30, 35, 47 एवं 54।*
9. *शिक्षा, श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी पृ. 12–15, 18, 37, 38 एवं 48।*
10. *मंगेश नाडकर्णी, सावित्री, 9 मई 2011, पृ. 3 एवं 10।*
11. *राजस्थान पत्रिका, जयपुर अंक, 2000।*
12. *अन्तिम परिवर्तन, 22 सितम्बर, 2014।*
13. *दैनिक भास्कर, 16 अप्रेल 2018।*